

## पक्षी और दीमक (कहानी) : गजानन माधव मुक्तिबोध | Pakshi aur Deemak Kahani

PDF Downloaded from [www.The-Gyan.in](http://www.The-Gyan.in)

बाहर चिलचिलाती हुई दोपहर है; लेकिन इस कमरे में ठंडा मद्धिम उजाला है। यह उजाला इस बन्द खिड़की की दरारों से आता है। यह एक चौड़ी मुँडेरवाली बड़ी खिड़की है, जिसके बाहर की तरफ़, दीवार से लगकर, काँटेदार बेंत की हरी घनी झाड़ियाँ हैं। इनके ऊपर एक जंगली बेल चढ़कर फैल गई है; और उसने आसमानी रंग के गिलास जैसे अपने फूल प्रदर्शित कर रखे हैं। दूर से देखनेवालों को लगेगा कि उस बेल के फूल नहीं, वरन् बेंत की झाड़ियों के अपने फूल हैं।

किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि लता ने अपनी घुमावदार चाल से न केवल बेंत की डालों को, उनके काँटों से बचते हुए, जकड़ रखा है, वरन् उनके कंटक-रोमोंवाले पत्तों के एक-एक हरे फीते को समेटकर, कसकर उनकी एक रस्सी-सी बना डाली है; और उस पूरी झाड़ी पर अपने फूल बिखराते-छिटकाते हुए, उन सौन्दर्य-प्रतीकों को सूरज और चाँद के सामने कर दिया है।

लेकिन, इस खिड़की को मुझे अकसर बन्द रखना पड़ता है। छत्तीसगढ़ के इस इलाके में, मौसम-बेमौसम आँधीनुमा हवाएँ चलती हैं। उन्होंने मेरी खिड़की के बन्द पल्लों को ढीला कर डाला है। खिड़की बन्द रखने का एक कारण यह भी है कि बाहर दीवार से लगकर खड़ी हुई हरी-घनी झाड़ियों के भीतर जो छिपे हुए, गहरे, हरे-साँवले अन्तराल हैं, उनमें पक्षी रहते हैं और अंडे देते हैं। वहाँ से कभी-कभी उनकी आवाज़ें, रात-बिरात, एकाएक सुनाई देती हैं। वे तीव्र भय की रोमांचक चीत्कारें हैं, क्योंकि वहाँ अपने शिकार की खोज में एक भुजंग आता रहता है। वह, शायद, उस तरफ़ की तमाम झाड़ियों के भीतर रेंगता फिरता है।

एक रात, इसी खिड़की में से एक भुजंग मेरे कमरे में भी आया। वह लगभग तीन फीट लम्बा अजगर था। खूब खा-पी करके, सुस्त होकर, वह खिड़की के पास, मेरी साइकिल पर लेटा हुआ था। उसका मुँह 'कैरियर' पर, जिस्म की लपेट में, छिपा हुआ था और पूँछ चमकदार 'हैंडिल' से लिपटी हुई थी। 'कैरियर' से लेकर 'हैंडिल' तक की सारी लम्बाई को उसने अपने देह-वलियों से कस लिया था। उसकी वह काली-लम्बी-चिकनी देह आतंक उत्पन्न करती थी।

हमने बड़ी मुश्किल से उसके मुँह को शनाख्त किया। और फिर एकाएक 'फ़िनाइल' से उस पर हमला करके उसे बेहोश कर डाला। रोमांचपूर्ण थे हमारे वे व्याकुल आक्रमण! गहरे भय की

लेकिन चन्द्र मिनटों बाद, मैंने अपने को, चुपचाप, उसके पीछे चलते हुए पाया। तब दिल में एक अजीब झोल महसूस हो रहा था। दिमाग के भीतर सिकुड़न-सी पड़ गई थी। बाल अनसँवरे थे ही। पैरों को किसी-न-किसी तरह आगे ढकेले जा रहा था।

लेकिन, यह सिर्फ़ दुपहर के गरम तीरों के कारण था, या श्यामला के कारण, यह कहना मुश्किल है।

उसने पीछे मुड़कर मेरी तरफ़ देखा और दिलासा देती हुई आवाज़ में कहा, 'स्कूल का मैदान ज़्यादा दूर नहीं है।'

वह मेरे आगे-आगे चल रही थी, लेकिन मेरा ध्यान उसके पैरों और तलुओं के पिछले हिस्से की तरफ़ ही था। उसकी टाँग, जो बिवाइयों-भरी और धूल-भरी थी, आगे बढ़ने में, उचकती हुई चप्पल पर चटचटाती थी। ज़ाहिर था कि ये पैर धूल-भरी सड़कों पर घूमने के आदी हैं।

यह खयाल आते ही, उसी खयाल से लगे हुए न मालूम किन धागों से होकर, मैं श्यामला से खुद को कुछ कम, कुछ हीन पाने लगा; और इसकी ग्लानि से उबरने के लिए, मैं उस चलती हुई आकृति के साथ, उसके बराबर हो लिया। वह कहने लगी, 'याद है शाम को बैठक है। अभी चलकर न देखते तो कब देखते! और सबके सामने साबित हो जाता है कि तुम खुद कुछ करते नहीं। सिर्फ़ जबान की कैंची चलती है।'

अब श्यामला को कौन बताए कि न मैं इस भरी दोपहर में स्कूल का मैदान देखने जाता और न शाम को बैठक में ही। सम्भव था कि 'कोरम' पूरा न होने के कारण बैठक ही स्थगित हो जाती। लेकिन श्यामला को यह कौन बताए कि हमारे आलस्य में भी एक छिपी हुई, जानी-अनजानी योजना रहती है। वर्तमान संचालन का दायित्व जिन पर है, वे खुद संचालक-मंडल की बैठक नहीं होने देना चाहते। अगर श्यामला से कहूँ तो वह पूछेगी, 'क्यों!'

फिर मैं क्या जवाब दूँगा? मैं उसकी आँखों से गिरना नहीं चाहता, उसकी नज़र में और-और चढ़ना चाहता हूँ। उसका प्रेमी जो हूँ; अपने व्यक्तित्व का सुन्दरतम चित्र उपस्थित करने की लालसा भी तो रहती है।

वैसे भी, धूप इतनी तेज़ थी कि बात करने या बात बढ़ाने की तबीयत नहीं हो रही थी।

मेरी आँखें सामने के पीपल के पेड़ की तरफ गईं, जिसकी एक डाल, तालाब के ऊपर, बहुत ऊँचाई पर, दूर तक चली गई थी। उसके सिरे पर एक बड़ा-सा भूरा पक्षी बैठा हुआ था। उसे मैंने चील समझा। लगता था कि वह मछलियों के शिकार की ताक लगाए बैठा है।

लेकिन उसी शाखा की बिलकुल विरुद्ध दिशा में, जो दूसरी डालें ऊँची होकर तिरछी और बाँकी-टेढ़ी हो गई हैं, उन पर झुंड के झुंड कौवे काँव-काँव कर रहे हैं मानो वे चील की शिकायत कर रहे हों और उचक-उचककर, फुदक-फुदककर, मछली की ताक में बैठे उस पक्षी के विरुद्ध प्रचार किए जा रहे हों।

कि इतने में मुझे उस मैदानी-आसमानी चमकीले खुले-खुलेपन में एकाएक, सामने दिखाई देता है-साँवले नाटे कद पर भगवे रंग की खदर का बंडीनुमा कुरता, लगभग चौरस मोटा चेहरा, जिसके दाहिने गाल पर एक बड़ा-सा मस्सा है, और उस मस्से में से बारीक बाल निकले हुए।

जी धँस जाता है उस सूरत को देखकर। वह मेरा नेता है, संस्था का सर्वेसर्वा है। उसकी खयाली तसवीर देखते ही मुझे अचानक दूसरे नेताओं की और सचिवालय के उस अँधेरे गलियारे की याद आती है, जहाँ मैंने इस नाटे-मोटे भगवे खदर कुरतेवाले को पहले-पहल देखा था।

उन अँधेरे गलियारों में से कई-कई बार गुजरा हूँ और वहाँ किसी मोड़ पर, किसी कोने में इकट्ठा हुए, ऐसी ही संस्थाओं के संचालकों के उतरे हुए चेहरों को देखा है। बावजूद श्रेष्ठ पोशाक और 'अपटूडे' भेस के, साँवलाया हुआ गर्व, बेबस गम्भीरता, अधीर उदासी और थकान उनके व्यक्तित्व पर राख-सी मलती है। क्यों?

इसलिए कि माली साल की आखिरी तारीख को अब सिर्फ़ दो या तीन दिन बचे हैं। सरकारी 'ग्रांट' अभी मंजूर नहीं हो पा रही है, कागज़ात अभी वित्त विभाग में ही अटके पड़े हैं। ऑफिसों के बाहर, गलियारे के दूर किसी कोने में, पेशाबघर के पास, या होटलों के कोनों में क्लर्कों की मुट्ठियाँ गरम की जा रही हैं, ताकि 'ग्रांट' मंजूर हो और जल्दी मिल जाए।

ऐसी ही किसी जगह पर मैंने इस भगवे खदर-कुरतेवाले को ज़ोर-ज़ोर से अँगरेज़ी बोलते हुए देखा था। और, तभी मैंने उसके तेज़ मिजाज़ और फ़ितरती दिमाग का अन्दाज़ा लगाया था।

इधर, भरी दोपहर में, श्यामला का पार्श्व-संगीत चल ही रहा है, मैं उसका कोई मतलब नहीं निकाल पाता। लेकिन, न मालूम कैसे, मेरा मन उसकी बातों से कुछ संकेत ग्रहण कर, अपने ही रास्ते पर चलता रहता है। इसी बीच उसके एक वाक्य से मैं चौंक पड़ा, 'इससे अच्छा है कि तुम इस्तीफा दे दो। अगर काम नहीं कर सकते तो गद्दी क्यों अड़ा रखी है।'

इसी बात को, कई बार, मैंने अपने से भी पूछा था। लेकिन आज उसके मुँह से ठीक उसी बात को सुनकर मुझे धक्का-सा लगा। और, मेरा मन कहाँ-का-कहाँ चला गया।

एक दिन की बात। मेरा सजा हुआ कमरा। चाय की चुस्कियाँ। कहकहे।

एक पीले रंग के तिकोने चेहरेवाला मसखरा, ऊल-जलूल शख्स। बगैर यह सोचे कि जिसकी वह निन्दा कर रहा है, वह मेरा कृपालु मित्र और सहायक है, वह शख्स बात बढ़ाता जा रहा है।

मैं स्तब्ध। किन्तु, कान सुन रहे हैं। हारे हुए आदमी जैसी मेरी सूरत, और मैं!

वह कहता जा रहा है, 'सूक्ष्मदर्शी यंत्र? सूक्ष्मदर्शी यंत्र कहाँ हैं?'

'हैं तो। ये हैं। देखिए।' क्लर्क कहता है। रजिस्टर बताता है। सब कहते हैं-हैं, हैं। ये हैं। लेकिन, कहाँ हैं? यह तो सब लिखित रूप में हैं, वस्तु-रूप में कहाँ हैं!

'वे खरीदे ही नहीं गए हैं! झूठी रसीद लिखने का कमीशन विक्रेता को, शेष रकम जेब में। सरकार से पूरी रकम वसूल!

'किसी खास जाँच के ऐन मौके पर किसी दूसरे शहर की...संस्था से उधार लेकर, सूक्ष्मदर्शी यंत्र हाज़िर! सब चीज़ें, मौजूद हैं। आइए, देख जाइए। जी हाँ, ये तो हैं सामने। लेकिन, जाँच खत्म होने पर सब गायब, अन्तर्धान। कैसा जादू है। खर्च का आँकड़ा खूब फुलाकर रखिए। सरकार के पास कागज़ात भेज दीजिए। खास मौकों पर ऑफिसों के धुँधले गलियारों और होटलों के कोनों में मुट्ठियाँ गरम कीजिए। सरकारी 'ग्रांट' मंजूर! और, उसका न जाने कितना हिस्सा, बड़े ही तरीके से संचालकों की जेब में! जी!'

भरी दोपहर में मैं आगे बढ़ा जा रहा हूँ। कानों में ये आवाज़ें गूँजती जा रही हैं। मैं व्याकुल हो उठता हूँ। श्यामला का पार्श्वसंगीत चल रहा है। मुझे ज़बरदस्त प्यास लगती है! पानी, पानी!

कि इतने में एकाएक विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की ऊँचे रोमन स्तम्भोंवाली इमारत सामने आ जाती है। तीसरा पहर। हलकी धूप। इमारत की पत्थर-सीढ़ियाँ, लम्बी, मोतिया।

सीढ़ियों से लगकर, अशक-मिली लाल मिट्टी के चमचमाते रास्ते पर सुन्दर काली 'शेवरलेट'।

भगवे खद्दर-कुरतेवाले की 'शेवरलेट', जिसके ज़रा पीछे में खड़ा हूँ, और देख रहा हूँ-यों ही-कार का नम्बर-कि इतने में उसके चिकने काले हिस्से में, जो आईने-सा चमकदार है, मेरी सूरत दिखाई देती है।

भयानक है वह सूरत। सारे अनुपात बिगड़ गए हैं। नाक डेढ़ गज लम्बी और कितनी मोटी हो गई है। चेहरा बेहद लम्बा और सिकुड़ गया है। आँखें खड़केदार। कान नदारद। भूत-जैसा अप्राकृतिक रूप। मैं अपने चेहरे की उस विद्रूपता को, मुग्ध भाव से, कुतूहल से और आश्चर्य से देख रहा हूँ, एकटक!

कि इतने में मैं दो कदम एक ओर हट जाता हूँ; और पाता हूँ कि मोटर के उस काले चमकदार आईने में, मेरे गाल; ठुड़ी, नाक, कान सब चौड़े हो गए हैं, एकदम चौड़े। लम्बाई लगभग नदारद। मैं देखता ही रहता हूँ, देखता ही रहता हूँ कि इतने में दिल के किसी कोने में कोई अँधियारा गटर एकदम फूट निकलता है। वह गटर है आत्मालोचन, दुःख और ग्लानि का।

और, सहसा, मुँह से हाय निकल पड़ती है। उस भगवे खद्दर-कुरतेवाले से मेरा छुटकारा कब होगा, कब होगा!

और, तब लगता है कि इस सारे जाल में, बुराई की इस अनेक चक्रोंवाली दैत्याकार मशीन में न जाने कब से मैं फँसा पड़ा हूँ। पैर भिंच गए हैं, पसलियाँ चूर हो गई हैं, चीख निकल नहीं पाती, आवाज़ हलक में फँसकर रह गई है।

कि इसी बीच अचानक एक नज़ारा दिखाई देता है रोमन स्तम्भोंवाली विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की ऊँची, लम्बी मोतिया सीढ़ियों पर से उतर रही है एक आत्मविश्वासपूर्ण गौरवमय नारीमूर्ति।

वह किरणीली मुसकान मेरी ओर फेंकती-सी दिखाई देती है। मैं इस स्थिति में नहीं हूँ कि उसका स्वागत कर सकूँ। मैं बदहवास हो उठता हूँ।

वह धीमे-धीमे मेरे पास आती है, अ यर्थनापूर्ण मुसकराहट के साथ कहती है, 'पढ़ी है आपने यह पुस्तक?'

काली ज़िल्द पर सुनहले रोमन अक्षरों में लिखा है, 'आई विल नॉट रेस्ट।'

मैं साफ़ झूठ बोल जाता हूँ, 'हाँ पढ़ी है, बहुत पहले।'

लेकिन, मुझे महसूस होता है कि मेरे चेहरे से तेलिया पसीना निकल रहा है। मैं बार-बार अपना मुँह पोंछता हूँ रूमाल से। बालों के नीचे ललाट-हाँ ललाट (यह शब्द मुझे अच्छा लगता है) को रगड़कर साफ़ करता हूँ।

और, फिर दूर एक पेड़ के नीचे, इधर आते हुए, भगवे खदर-कुरतेवाले की आकृति को देखकर श्यामला से कहता हूँ, 'अच्छा, मैं ज़रा उधर जा रहा हूँ। फिर भेंट होगी।' और, सभ्यता के तकाज़े से मैं उसके लिए नमस्कार के रूप में मुसकराने की चेष्टा करता हूँ।

पेड़!

अजीब पेड़ है, (यहाँ रुका जा सकता है), बहुत पुराना पेड़ है, जिसकी जड़ें उखड़कर बीच में से टूट गई हैं, और जो साबुत हैं, उनके आस-पास की मिट्टी खिसक गई है। इसलिए वे उभरकर ऐंठी हुई-सी लगती है। पेड़ क्या है, लगभग ठूँठ है। उसकी शाखाएँ काट डाली गई हैं।

लेकिन, कटी हुई बाँहोंवाले उस पेड़ में से नई डालें निकलकर, हवा में खेल रही हैं। उन डालों में कोमल-कोमल हरी-हरी पत्तियाँ झालर-सी दिखाई देती हैं। पेड़ के मोटे तने में से जगह-जगह ताजा गोंद निकल रहा है। गोंद की साँवली कत्थई गठानें मजे में देखी जा सकती हैं।

अजीब पेड़ है, अजीब! (शायद, यह अच्छाई का पेड़ है) इसलिए कि एक दिन शाम की मोतिया-गुलाबी आभा में मैंने एक युवक-युवती को इस पेड़ के तले ऊँची उठी हुई जड़ पर आराम से बैठे हुए पाया था। सम्भवतः, वे अपने अत्यन्त आत्मीय क्षणों में डूबे हुए थे।

मुझे देखकर युवक ने आदरपूर्वक नमस्कार किया। लड़की ने भी मुझे देखा और झेंप गई। हलके झटके से उसने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। लेकिन उसकी झेंपती हुई ललाई मेरी नज़रों से न बच सकी।

इस प्रेम-मुग्ध युग्म को देखकर मैं भी एक विचित्र आनन्द में डूब गया। उन्हें निरापद करने के लिए, जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ मैं वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया।

यह पिछली गरमियों की एक मनोहर साँझ की बात है। लेकिन आज इस भरी दोपहरी में श्यामला के साथ पल-भर उस पेड़ के तले बैठने को मेरी भी तबीयत हुई। बहुत ही छोटी और भोली इच्छा है यह!

लेकिन, मुझे लगा कि शायद श्यामला मेरे सुझाव को नहीं मानेगी। स्कूल मैदान पहुँचने की उसे जल्दी जो है। कहने की मेरी हिमत ही नहीं हुई।

लेकिन, दूसरे क्षण, आप-ही-आप, मेरे पैर उस ओर बढ़ने लगे। और, ठीक उसी जगह में भी जाकर बैठ गया, जहाँ एक साल पहले वह युग्म बैठा था। देखता क्या हूँ कि श्यामला भी आकर बैठ गई है।

तब वह कह रही थी, 'सचमुच बड़ी गरम दोपहर है।'

सामने, मैदान-ही-मैदान हैं, भूरे मटमैले! उन पर सिरस और सीसम के छायादार विराम-चिह्न खड़े हुए हैं। मैं लुब्ध और मुग्ध होकर उनकी घनी-गहरी छायाएँ देखता रहता हूँ...।

...क्योंकि...क्योंकि मेरा यह पेड़, यह अच्छाई का पेड़, छाया प्रदान नहीं कर सकता, आश्रय प्रदान नहीं कर सकता, (क्योंकि वह जगह-जगह काटा गया है) वह तो कटी शाखाओं की दूरियों और अन्तरालों में से केवल तीव्र और कष्टप्रद प्रकाश को ही मार्ग दे सकता है।

लेकिन, मैदानों के इस चिलचिलाते अपार विस्तार में, एक पेड़ के नीचे, अकेलेपन में, श्यामला के साथ रहने की यह जो मेरी स्थिति है उसका अचानक मुझे गहरा बोध हुआ। लगा कि श्यामला मेरी है, और वह भी इसी भाँति चिलचिलाते गरम तत्वों से बनी हुई नारी-मूर्ति है। गरम बफती हुई मिट्टी-सा चिलचिलाता हुआ, उसमें अपनापन है।

तो क्या, आज ही, अगली अनगिनत गरम दोपहरियों के पहले, आज ही, अगले कदम उठाए जाने के पहले, इसी समय, हाँ इसी समय, उसके सामने, अपने दिल की गहरी छिपी हुई तहें और सतहें खोलकर रख दूँ...कि जिससे आगे चलकर, उसे गलतफहमी में रखने, उसे धोखे में रखने का अपराधी न बनूँ!

कि इतने में, मेरी आँखों के सामने, फिर उसी भगवे खदर-कुरतेवाले की तसवीर चमक उठी। मैं व्याकुल हो गया, और उससे छुटकारा चाहने लगा।

तो फिर आत्म-स्वीकार कैसे करूँ, कहाँ से शुरू करूँ! लेकिन, क्या वह मेरी बातें समझ सकेगी? किसी तनी हुई रस्सी पर वजन साधते हुए चलने का, 'हाँ' और 'ना' के बीच में रहकर ज़िन्दगी की उलझनों में फँसने का, तजुर्बा उसे कहाँ है!

हटाओ, कौन कहे!

लेकिन, यह स्त्री शिक्षिता तो है! बहस भी तो करती है! बहस की बातों का सम्बन्ध न उसके स्वार्थ से होता है, न मेरे। उस समय हम लड़ भी तो सकते हैं। और ऐसी लड़ाइयों में कोई स्वार्थ भी तो नहीं होता। उसके सामने अपने दिल की सतहें खोल देने में न मुझे शर्म रही, न मेरे सामने उसे। लेकिन, वैसा करने में तकलीफ़ तो होती है, अजीब और पेचीदा, घूमती-घुमाती तकलीफ़!

और उस तकलीफ़ को टालने के लिए हम झूठ भी तो बोल देते हैं, सरासर झूठ, सफ़ेद झूठ! लेकिन झूठ से सच्चाई और गहरी हो जाती है, अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक प्राणवान, मानो वह हमारे लिए और सारी मनुष्यता के लिए विशेष सार रखती हो। ऐसी सतह पर हम भावुक हो जाते हैं। और, यह सतह अपने सारे निजीपन में बिल्कुल बेनिजी है। साथ ही, मीठी भी! हाँ, उस स्तर की अपनी विचित्र पीड़ाएँ हैं, भयानक सन्ताप हैं, और इस अत्यन्त आत्मीय किन्तु निर्वैयक्तिक स्तर पर, हम एक हो जाते हैं, और कभी-कभी ठीक उसी स्तर पर बुरी तरह लड़ भी पड़ते हैं।

श्यामला ने कहा, 'उस मैदान को समतल करने में कितना खर्च आएगा?'

'बारह हज़ार।'

'उनका अन्दाज़ क्या है?'

'बीस हज़ार।'

'तो बैठक में जाकर समझा दोगे और यह बता दोगे कि कुल मिलाकर बारह हज़ार से ज़्यादा नामुमकिन है?'

'हाँ, उतना मैं कर दूँगा।'

'उतना का क्या मतलब?'

अब मैं उसे 'उतना' का क्या मतलब बताऊँ! साफ़ है कि उस भगवे खददर कुरतेवाले से मैं दुश्मनी मोल नहीं लेना चाहता। मैं उसके प्रति वफ़ादार रहूँगा क्योंकि मैं उसका आदमी हूँ। भले ही वह बुरा हो, भ्रष्टाचारी हो, किन्तु उसी के कारण मेरी आमदनी के ज़रिए बने हुए हैं! व्यक्ति-निष्ठा भी कोई चीज़ है, उसके कारण ही मैं विश्वास-योग्य माना गया हूँ। इसलिए, मैं कई महत्त्वपूर्ण कमेटियों का सदस्य हूँ।

मैंने विरोध-भाव से श्यामला की तरफ़ देखा। वह मेरा रुख देखकर समझ गई। वह कुछ नहीं बोली। लेकिन, मानो मैंने उसकी आवाज़ सुन ली हो।

श्यामला का चेहरा 'चार जनियों-जैसा' है। उस पर साँवली मोहक दीप्ति का आकर्षण है। किन्तु, उसकी आवाज़...हाँ आवाज़...वह इतनी सुरीली और मीठी है कि उसे अनसुना करना निहायत मुश्किल है। उस स्वर को सुनकर, दुनिया की अच्छी बातें ही याद आ सकती हैं।

पता नहीं किस तरह की परेशान पेचीदगी मेरे चेहरे पर झलक उठी कि जिसे देखकर उसने कहा, 'कहो, कहो, क्या कहना चाहते हो।'

यह वाक्य मेरे लिए निर्णायक बन गया। फिर भी, अवरोध शेष था। अपने जीवन का सार-सत्य अपना गुप्त-धन है। उसके अपने गुप्त संघर्ष हैं, उसका अपना एक गुप्त नाटक है। वह प्रकट करते नहीं बनता। फिर भी, शायद है कि उसे प्रकट कर देने से उसका मूल्य बढ़ जाए, उसका कोई विशेष उपयोग हो सके।

एक था पक्षी। वह नीले आसमान में खूब ऊँचाई पर उड़ता जा रहा था। उसके साथ उसके पिता और मित्र भी थे।

(श्यामला मेरे चेहरे की तरफ़ आश्चर्य से देखने लगी।)

सब, बहुत ऊँचाई पर उड़नेवाले पक्षी थे। उनकी निगाहें भी बड़ी तेज़ थीं। उन्हें दूर-दूर की भनक और दूर-दूर की महक भी मिल जाती।

एक दिन वह नौजवान पक्षी ज़मीन पर चलती हुई एक बैलगाड़ी को देख लेता है। उसमें बड़े-बड़े बोरे भरे हुए हैं। गाड़ीवाला चिल्ला-चिल्लाकर कहता है, 'दो दीमकें लो, एक पंख दो।'

उस नौजवान पक्षी को दीमकों का शौक था। वैसे तो ऊँचे उड़नेवाले पंछियों को, हवा में ही बहुत-से कीड़े तैरते हुए मिल जाते, जिन्हें खाकर वे अपनी भूख थोड़ीबहुत शान्त कर लेते।

लेकिन दीमकें सिर्फ़ ज़मीन पर मिलती थीं। कभी-कभी पेड़ों पर-ज़मीन से तने पर चढ़कर, ऊँची डाल तक, वे मटियाला लम्बा घर बना लेतीं। लेकिन, ऐसे कुछ ही पेड़ होते, और वे सब एक जगह न मिलते।

नौजवान पक्षी को लगा-यह बहुत बड़ी सुविधा है कि आदमी दीमकों को बोरों में भरकर बेच रहा है।

वह अपनी ऊँचाइयाँ छोड़कर मँडराता हुआ नीचे उतरता है, और पेड़ की एक डाल पर बैठ जाता है।

दोनों का सौदा तय हो जाता है। अपनी चोंच से एक पर को खींचकर तोड़ने में उसे तकलीफ़ भी होती है; लेकिन उसे वह बरदाश्त कर लेता है। मुँह में बड़े स्वाद के साथ दो दीमकें दबाकर वह पक्षी फुर्र से उड़ जाता है।

(कहते-कहते में थक गया शायद साँस लेने के लिए। श्यामला ने पलकें झपकाईं और कहा, 'हूँ')।

अब उस पक्षी को गाड़ीवाले से दो दीमकें खरीदने और एक पर देने की बड़ी आसानी मालूम हुई। वह रोज़ तीसरे पहर नीचे उतरता और गाड़ीवाले को एक पंख देकर, दो दीमकें खरीद लेता।

कुछ दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। एक दिन उसके पिता ने देख लिया। उसने समझाने की कोशिश की कि बेटे, दीमकें हमारा स्वाभाविक आहार नहीं हैं, और उनके लिए अपने पंख तो हरगिज़ नहीं दिए जा सकते।

लेकिन, उस नौजवान पक्षी ने बड़े ही गर्व से अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। उसे ज़मीन पर उतरकर दीमकें खाने की चट लग गई थी। अब उसे न तो दूसरे कीड़े अच्छे लगते, न फल, न अनाज के दाने। दीमकों का शौक अब उस पर हावी हो गया था।

(श्यामला अपनी फैली हुई आँखों से मुझे देख रही थी, उसकी ऊपर उठी हुई पलकें और भँवें बड़ी ही सुन्दर दिखाई दे रही थीं।)

लेकिन, ऐसा कितने दिनों तक चलता। उसके पंखों की संख्या लगातार घटती चली गई। अब वह, ऊँचाइयों पर, अपना सन्तुलन साध नहीं सकता था, न बहुत समय तक पंख उसे सहारा दे सकते थे। आकाश-यात्रा के दौरान उसे, जल्दी-जल्दी पहाड़ी चट्टानों, पेड़ों की चोटियों, गुम्बदों और बुर्जों पर हाँफते हुए बैठ जाना पड़ता। उसके परिवारवाले तथा मित्र ऊँचाइयों पर तैरते हुए आगे बढ़ जाते। वह बहुत पिछड़ जाता। फिर भी दीमक खाने का उसका शौक कम नहीं हुआ। दीमकों के लिए गाड़ीवाले को वह अपने पंख तोड़-तोड़कर देता रहा।

(श्यामला गम्भीर होकर सुन रही थी। अब की बार उसने 'हूँ' भी नहीं कहा।)

फिर, उसने सोचा कि आसमान में उड़ना ही फ़िज़ूल है। वह मूर्खों का काम है। उसकी हालत यह थी कि अब वह आसमान में उड़ ही नहीं सकता था, वह सिर्फ़ एक पेड़ से उड़कर दूसरे पेड़ तक

पहुँच पाता। धीरे-धीरे उसकी यह शक्ति भी कम होती गई। और एक समय वह आया जब वह बड़ी मुश्किल से, पेड़ की एक डाल से लगी हुई दूसरी डाल पर, चलकर, फुदककर पहुँचता। लेकिन दीमक खाने का शौक नहीं छूटा।

बीच-बीच में गाड़ीवाला बुत्ता दे जाता। वह कहीं नज़र में न आता। पक्षी उसके इन्तज़ार में घुलता रहता।

लेकिन, दीमकों का शौक जो उसे था। उसने सोचा, 'मैं खुद दीमकें ढूँढ़ूँगा।' इसलिए वह पेड़ पर से उतरकर ज़मीन पर आ गया; और घास के एक लहराते गुच्छे में सिमटकर बैठ गया।

(श्यामला मेरी ओर देखे जा रही थी। उसने अपेक्षापूर्वक कहा, 'हूँ!')

फिर, एक दिन उस पक्षी के जी में न मालूम क्या आया। वह खूब मेहनत से ज़मीन में से दीमकें चुन-चुनकर, खाने के बजाय, उन्हें इकट्ठा करने लगा। अब उसके पास दीमकों के ढेर के ढेर हो गए।

फिर, एक दिन एकाएक, वह गाड़ीवाला दिखाई दिया। पक्षी को बड़ी खुशी हुई। उसने पुकारकर कहा, 'गाड़ीवाले, ओ गाड़ीवाले! मैं कब से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा था।'

पहचानी आवाज़ सुनकर गाड़ीवाला रुक गया। तब पक्षी ने कहा, 'देखो, मैंने कितनी सारी दीमकें जमा कर ली हैं।'

गाड़ीवाले को पक्षी की बात समझ में नहीं आई। उसने सिर्फ़ इतना कहा, 'तो मैं क्या करूँ।'

'ये मेरी दीमकें ले लो, और मेरे पंख मुझे वापस कर दो।' पक्षी ने जवाब दिया। गाड़ीवाला ठठाकर हँस पड़ा। उसने कहा, 'बेवकूफ़, मैं दीमक के बदले पंख लेता हूँ, पंख के बदले दीमक नहीं!'

गाड़ीवाले ने 'पंख' शब्द पर बहुत ज़ोर दिया था।

(श्यामला ध्यान से सुन रही थी। उसने कहा, 'फिर?')

गाड़ीवाला चला गया। पक्षी छटपटाकर रह गया। एक दिन एक काली बिल्ली आई और अपने मुँह में उसे दबाकर चली गई। तब उस पक्षी का खून टपक-टपककर ज़मीन पर बूँदों की लकीर बना रहा था।

(श्यामला ध्यान से मुझे देखे जा रही थी; और उसकी एकटक निगाहों से बचने के लिए मेरी आँखें तालाब की सिहरती-काँपती, चिलकती-चमकती लहरों पर टिकी हुई थीं।)

कहानी कह चुकने के बाद, मुझे एक ज़बरदस्त झटका लगा। एक भयानक प्रतिक्रिया-कोलतार-जैसी काली, गन्धक-जैसी पीली-नारंगी।

‘नहीं, मुझमें अभी बहुत कुछ शेष है, बहुत कुछ। मैं उस पक्षी-जैसा नहीं मरूँगा। मैं अभी भी उबर सकता हूँ। रोग अभी असाध्य नहीं हुआ है। ठाठ से रहने के चक्कर से बँधे हुए बुराई के चक्कर तोड़े जा सकते हैं। प्राणशक्ति शेष है, शेष!’

तुरन्त ही लगा कि श्यामला के सामने फ़िज़ूल अपना रहस्य खोल दिया, व्यर्थ ही आत्म-स्वीकार कर डाला। कोई भी व्यक्ति इतना परम प्रिय नहीं हो सकता कि भीतर का नंगा, बालदार रीछ उसे बताया जाए! मैं असीम दुख के खारे मृतक सागर में डूब गया।

श्यामला अपनी जगह से धीरे से उठी, साड़ी का पल्ला ठीक किया, उसकी सलवटें बराबर जमाई, बालों पर से हाथ फेरा। और फिर (अँगरेज़ी में) कहा, ‘सुन्दर कथा है, बहुत सुन्दर!’

फिर, वह क्षण-भर खोई-सी खड़ी रही, और फिर बोली, ‘तुमने कहाँ पढ़ी?’ मैं अपने ही शून्य में खोया हुआ था। उसी शून्य के बीच मैं से मैंने कहा, ‘पता नहीं...किसी ने सुनाई या मैंने कहीं पढ़ी।’

और, वह श्यामला अचानक मेरे सामने आ गई, कुछ कहना चाहने लगी, मानो उस कहानी में उसकी किसी बात की ताईद होती हो।

उसके चेहरे पर धूप पड़ी हुई थी। मुखमंडल सुन्दर और प्रदीप्त दिखाई दे रहा था।

कि इसी बीच हमारी आँखें सामने के रास्ते पर जम गईं।

घुटनों तक मैली धोती और काली, नीली, सफ़ेद या लाल बंडी पहने कुछ देहाती भाई, समूह में, चले जा रहे थे। एक के हाथ में एक बड़ा-सा डंडा था, जिसे वह अपने आगे, सामने, किए हुए था। उस डंडे पर एक लम्बा मरा हुआ साँप झूल रहा था। काला भुजंग, जिसके पेट की हलकी सफ़ेदी भी झलक रही थी।

श्यामला ने देखते ही पूछा, ‘कौन-सा साँप है यह?’

वह ग्रामीण मुख, छत्तीसगढ़ी लहजे में चिल्लाया, 'करेट है बाई, करेट!'

श्यामला के मुँह से निकल पड़ा, 'ओप्फो! करेट तो बड़ा जहरीला साँप होता है।'

फिर, मेरी ओर देखकर, कहा, 'नाग की तो दवा भी निकली है, करेट की तो कोई दवा नहीं है। अच्छा किया, मार डाला। जहाँ साँप देखो, मार डालो; फिर वह पनियल साँप ही क्यों न हो।'

और फिर, न जाने क्यों, मेरे मन में उसका यह वाक्य गूँज उठा, 'जहाँ साँप देखो, मार डालो।'

और ये शब्द मेरे मन में गूँजते ही चले गए।

कि इसी बीच...रजिस्टर में चढ़े हुए आँकड़ों की एक लम्बी मीज़ान मेरे सामने झूल उठी, और गलियारे के अँधेरे कोनों में गरम होनेवाली मुट्ठियों का चोर-हाथ।

श्यामला ने पलटकर कहा, 'तुम्हारे कमरे में भी तो साँप घुस आया था। कहाँ से आया था वह?'

फिर उसने खुद ही जवाब दे लिया, 'हाँ, वह पास की खिड़की में से आया होगा।'

खिड़की की बात सुनते ही मेरे सामने, बाहर की काँटेदार बेंत की झाड़ी आ गई, जिसे जंगली बेल ने लपेटकर रखा था। मेरे खुद के तीखे काँटों के बावजूद, क्या श्यामला मुझे इसी तरह लपेट सकेगी! बड़ा ही 'रोमैंटिक' खयाल है, लेकिन कितना भयानक!

...क्योंकि श्यामला के साथ अगर मुझे ज़िन्दगी बसर करनी है तो न मालूम कितने ही भगवे खद्दर-कुरतेवालों से मुझे लड़ना पड़ेगा, जी कड़ा करके लड़ाइयाँ मोल लेनी पड़ेंगी और अपनी आमदनी के ज़रिए खत्म कर देने होंगे। श्यामला का क्या है! वह तो एक गाँधीवादी कार्यकर्ता की लड़की है, आदिवासियों की एक संस्था में कार्य करती है। उसका आदर्शवाद भी भोले-भाले आदिवासियों की उस कुल्हाड़ीजैसा है जो जंगल में अपने बेईमान और बेवफ़ा साथी का सिर धड़ से अलग कर देती है। बारीक बेईमानियों का सूफ़ियाना अन्दाज़ उसमें कहाँ!

किन्तु, फिर भी आदिवासियों-जैसे उस अमिश्रित आदर्शवाद में मुझे आत्मा का गौरव दिखाई देता है, मनुष्य की महिमा दिखाई देती है, पैसे तर्क की अपनी अन्तिम प्रभावोत्पादक परिणति का उल्लास दिखाई देता है-और ये सब बातें मेरे हृदय को स्पर्श कर जाती हैं। तो अब मैं इसके लिए क्या करूँ, क्या करूँ!

और अब मुझे सज्जायुक्त भद्रता के मनोहर वातावरण वाला अपना कमरा याद आता है...अपना अकेला धुँधला-धुँधला कमरा। उसके एकान्त में प्रत्यावर्तित और पुनः प्रत्यावर्तित प्रकाश के कोमल वातावरण में मूल-रश्मियों और उनके उद्गम-स्रोतों पर सोचते रहना, खयालों की लहरों में बहते रहना कितना सरल, सुन्दर और भद्रता-पूर्ण है। उससे न कभी गरमी लगती है, न पसीना आता है, न कभी कपड़े मैले होते हैं। किन्तु प्रकाश के उद्गम के सामने रहना, उसका सामना करना, उसकी चिलचिलाती दोपहर में रास्ता नापते रहना और धूल फाँकते रहना कितना त्रासदायक है! पसीने से तरबतर कपड़े इस तरह चिपचिपाते हैं और इस क्रूर गन्दे मालूम होते हैं कि लगता है...कि अगर कोई इस हालत में हमें देख ले तो वह बेशक हमें निचले दर्जे का आदमी समझेगा। सजे हुए टेबल पर रखे कीमती फाउंटेन पेन-जैसे नीरव-शब्दांकनवादी हमारे व्यक्तित्व, जो बहुत बड़े ही खुशनुमा मालूम होते हैं-किन्हीं महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण-जब वे आँगन में और घर-बाहर चलती हुई झाड़ू-जैसे काम करनेवाले दिखाई दें, तो इस हालत में वे यदि सड़क-छाप समझे जाएँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

लेकिन, मैं अब ऐसे कामों की शर्म नहीं करूँगा, क्योंकि जहाँ मेरा हृदय है, वहीं मेरा भाग्य है!

**(सम्भावित रचनाकाल 1959 के बाद। कल्पना, दिसम्बर 1963 में प्रकाशित)**